किले में औरत

रघुवीर सहाय

किले में औरत

उस शहर में मुझे सिर्फ तीन दिन रहना था। होने को इन्हीं तीन में से किसी एक दिन मेरी हत्या हो जा सकती थी। पढ़ा था कि इस शहर में रोज हत्याएँ होती हैं। लोग हमला बोल कर मार डालते हैं। अखबार में सिर्फ इतना छपता था - आज चार और मरे। इससे

जाहिर था कि वे कोई और थे जो मरते थे; अखबार पढ़ सकनेवालों में वे नहीं थे, नहीं तो अखबार उनका नाम-धाम भी छापता। उधर शहर में पहुँच कर मैंने देखा - चौक में तमाम लोग मरे नहीं हैं, चल-फिर रहे हैं। उनको भी यह डर न था कि रोज हत्या होती है तो आज भी और उन्हीं की हो सकती है। वे आश्वस्त थे कि और ही लोग होंगे जो मारे जाएँगे।

मैं एक होटल में ठहरा। होटल आत्मरक्षा के लिए क़िलेबन्दी के तरीके पर बना हुआ था। मगर वह बना तो तब का था जब हत्याएँ इस शहर में नहीं, गाँवों में हुआ करती थीं और वहाँ की खबरें छपती ही न थीं - आज तो बिना नाम के छप भी जाती हैं। वे सब स्थान होटल से बहुत दूर और ऐसे गरीबों के थे जो इस जन्म में इस होटल में आ ही नहीं सकते थे। तब होटल का यह नक्शा आत्मरक्षा के लिए नहीं, खाली रोआब डालने के लिए बनाया गया होगा। पर आज यह कितने काम आ रहा था! आखिर हत्याओं का सिलसिला नीचे से ऊपर की ओर सरकता आ रहा था न। किसी दिन होटल में भी पहुँचता। इतिहास बताता है कि ध्वस्त नगर में हमेशा एक आलीशान होटल ही शरणालय के रूप में बच रहा करता है।

अपने आप से मैं इस होटल में कभी न ठहरा होता। जिस दुकान का मैं काम कर रहा था, वह काम के सिलसिले में चाहती थी कि मैं इसमें रहूँ। मैं यह जानता था कि अगर मैं इसमें ठहरा तो जब हमला होगा कोई मुझे औरों से अलग न मानेगा। मगर मुझे अपना वेतन कमाने के लिए काम करने के अलावा यह खतरा भी उठाना था।

मैं यहाँ पहुँचा तो सबसे पहले दरबान दिखाई दिया। उसके हाथ में पुराने जमाने की बंदूक थी, जैसी मैंने बचपन में बरातों में छुड़ाई जाती देखी थी। मैंने उसे पहचान लिया, बन्दूक को नहीं, दरबान को। वह गोंडा जिले का था। उसने मुझे पहचान लिया। मैं भी वहीं का हूँ। मेरा खर्च कोई और दे रहा था, उसकी वर्दी कोई और दे रहा था। फिर भी उसने मुझे उसी तरह सलाम किया जैसे वह किसी जमाने में कलकत्ते के साहबों को करता होगा। अब गोंडा के लोग भी बाहर निकलकर इस होटल में घुसने लायक हो गए हैं। यह जान कर मारे खुशी के वह फूल नहीं गया। उसे यह शक नहीं था कि शायद मैं बहुत अमीर हूँ। उसे विश्वास था कि मैं उससे कुछ अधिक पैसेवाला हूँ और बस इतना अधिक भी होऊँ तो काफी है कि उसे कुछ इनाम दे सकूँ। गरीबी और गिरावट का एक दिन होता है जब आदमी अपने से जरा-से मजबूत आदमी से डरने लगता है। इसी को लोग कर्तव्य और संतुलन कहते हैं। वह दिन उसकी जिन्दगी में आ चुका था।

शीशे का दरवाजा पार करते ही एक बरोठा मिला जिसमें आदमी के शरीर से बड़े आकार की कुछ कुर्सियों पर लोग बैठे हुए थे। ये न जाने क्या समझ कर इतने भड़कीले कपड़े पहन कर आए थे। शायद उनके पास पैसा बहुत था जिसे ये कपड़ों पर खर्च कर डालना चाहते थे। शायद इनके पास अपनी अक्ल इतनी कम थी कि ये तय नहीं कर सकते थे कि उन्हें क्या पहनना चाहिए। वे बैठे इस शान से थे जैसे होटल में रहने के सच्चे हकदार वही हैं जिनके पास पैसा ज्यादा और अक्ल कम है।

जिस कमरे में मुझे जाना था उसकी चाभी मैंने पटरे पर रखी देखी। वह बहुत बड़ी चीज थी जैसे किसी खजाने की चाभी हो। उसका पुछल्ला उससे भी बड़ा था। ये दोनों चीजें मिल कर काफी भारी एक चीज बन गई थीं जिससे कमरे में घुसने का अधिकार एक और भारी चीज बन गया था।

कई सूने बरामदे और बरोठे पार करके मैं लिफ्ट के सामने पहुँचा। लिफ्टवाले ने मुझे दाखिल करके एक बड़ा भारी हैंडिल घुमाया। घूँ-घूँ करके लिफ्ट चली। मुझे लग रहा था कि इसमें कोई गड़बड़ है, नहीं तो सिर्फ बटन दबा कर में खुद लिफ्ट को ले जा सकता था। लिफ्टवाला कहाँ का रहनेवाला है, मैं सोचने लगा। वह मेरी ओर देखे तो पहचानूँ। वह दीवाल की ओर मुँह किए खड़ा रहा। जब वह इधर घूमा तो मैंने कहा, बस्ती, नहीं बेगूसराय। उसके चेहरे पर एक फुफ्फल मोटापा था जो लगातार असन्तुलित आहार से आ जाया करता है। कितना मुश्किल था उसे पहचानना - इस तरह के चेहरेवाले हिन्दुस्तानियों का प्रदेश इतना बड़ा है। वह भी वर्दी पहने हुए था और बड़ी सख्त वर्दी थी वह। जैसे उसकी तनख्वाह की सारी कमी पूरी कर देगी। खास तौर से कड़ी गोल टोपी जो किसी विलायती लिफ्टवाले पर सैनिक सजावट का धोखा देती। इसको वह बेबसी की तस्वीर बना रही थी। इसके बच्चे क्या पहने होंगे, मैंने सोचा - छोटी लड़कियाँ अपनी बड़ी बहनों की उतरनें और बड़े, बूचे कुरते जो उनकी मारी गई बाढ़ के साथ ऐसे फ़िट हो गए होंगे कि जन्म भर वे धो-धो कर उन्हें पहन सकेंगी। लिफ्टवाले ने सलाम किया।

जिसका मतलब था कि मैं उसे एक रुपया दूँ जिसका मतलब था कि वह वरदी होटल से पाएगा और गुजारा सलाम करके। मैंने उसे रुपया नहीं दिया। मैं उस गरीबी में शामिल नहीं था जो उसकी थी। होता तो रुपया देना और भी बदसलूक होता। मैं उस अमीरी में शामिल नहीं था जो इस तरह रुपया देनेवालों की होती है। होता तो मैं मैं न होता। पर मैं कितनी चालाकी से छुट्टी पा रहा था - यहाँ हो कर भी और यह जान कर भी कि मुझे यहाँ नहीं होना चाहिए था। लिफ्टवाले ने यह सब कुछ नहीं भाँपा। उसने यही समझा कि फिर कभी देंगे। बख्शीश न देने से मेरे और उसके बीच कोई अपनापा

उपजा है, यह भी उसने नहीं जताया। जो मैं यह जताता तो यह मेरी चालाकी की हद होती और वह, मैं, उसके गाँव का भी होता तो भी न मानता कि मैं उसकी जमात का हूँ। वह गाँव से अपनी औकात ले कर शहर में आया था और यहाँ वह उससे सम्बद्ध हर कागज पर दर्ज कर दी जा चुकी थी।

कमरे में जा कर मैं बैठ गया। ऐसा लगा जैसे अब यहाँ कोई न आ सकेगा। फौरन कमरे से बाहर निकल कर मैंने देखा, दूर-दूर तक कोई न था। इधर-उधर कोई दिखाई भी पड़ता तो वह ऐसा व्यक्ति होता जो बात करने के लिए नहीं, खिदमत के लिए रखा गया था। सब खिदमतगार निहत्थे थे और धीरे-धीरे इतने पतित हो चुके थे कि कोई आक्रमण न कर सकते थे। ऊपर से बाहर दरबान मौजूद था। खतरे का कहीं नामोनिशान नहीं। मगर मुझे इतना बेखबर होने की जरूरत ही क्या थी? कोई जरूरत नहीं थी। सहसा यह अद्‌भुत विचार मन में आया कि ये सब कमरे एकान्त अध्ययन के लिए कितने उपयुक्त हैं, परंतु इतने महँगे हैं ये कमरे कि इनमें पहुँचते ही यह खयाल दिमाग में घर करने लगता है कि यहाँ अपना एकदम निजी व्यभिचार करने के लायक आदर्श एकान्त है।

थोड़ी देर में भूख लगने लगी। सन्नाटे में बरामदों और बरोठों का दाएँ-बाएँ मुड़ता एक सिलसिला पार करके मुझे खाने के कमरे में जाना था। वहाँ पहुँच कर मैंने दरअसल समझा कि यह इमारत कितनी बड़ी है। इसके हर दो कमरों में जहाँ भीड़ हो सकती है, परस्पर बहुत फासला है और वह फासला सूने बरामदों और बरोठों से भरा हुआ है।

खाने की ऊँची छत और झाड़फानूसवाले कमरे में कई लोग थे। जितने ग्राहक थे उनसे ज्यादा बैरे थे। वे चुपचाप खड़े मानो आशा कर रहे थे कि जो कोई आएगा, खूब खाएगा। खाना उसकी जिन्दगी में एक तरह का फैशन होगा। वरना वह यहाँ आए ही क्यों और बैरों को काम ही क्यों मिले? वह खाने के लिए न खाएगा। वैसा करे तो बड़ी निराशा होगी। शायद उसको भूख भी न हो। वह खाएगा क्योंकि शाम हो गई है और जब तक वह खा न ले शाम खत्म न होगी। उसके पास कितना ही वक्त क्यों न हो, कभी-न-कभी शाम को खत्म करना उसकी जिन्दगी में व्यवस्था के लिए जरूरी होगा।

खाना बहुत ही बदमजा था। गोश्त से मानो बकरे की जिन्दगी की एकरसता महक बन कर उठ रही थी। रोटी में नंगे बदन की-सी वह गरमाई न थी जो तन्दूर उसे देता है, वह गिजगिजी और बूढ़ी-सी थी। अचारों और चटनियों से एक खट्टी सड़ाँध उठ रही थी जैसे किसी ने इन्हें गंदे हाथों छू लिया हो और ये फफूँदिया रही हों। मैंने जल्दी-जल्दी

खत्म किया। जिन परिस्थितियों में मेरे जीवन के इतने वर्ष बीते थे उनमें मुझे हबड़-हबड़ करके खाने की आदत पड़ चुकी थी।

बाकी किसी को जल्दी न थी। मानो वे किसी का इंतजार कर रहे हों। एकाएक बत्तियाँ गुल हो गईं। सब नहीं। एक गुलाबी रोशनी जल रही थी। कई आदमी बाजों के सामने खड़े दिखाई दिए। एक क्षण को लगा कि मैं इन्हें पहचानता हूँ। शायद ये वही लिफ्टवाले और दरबान हैं। इनको दूसरी वर्दी पहना दी गई है। दूसरी वर्दी तो थी ही। वे लोग भी दूसरे थे। एक ने झाँझ पर चोट मारी और ऐसे मटक कर खड़ा हो गया मानो मस्त हो गया हो।

एक व्यक्ति उस बड़े कमरे में आया। वह एक औरत थी। वह समझ रही थी कि वह सुन्दर है। यह उसकी चाल-ढाल से प्रकट था। मैंने सोचा, गाना गाएगी। मगर उसने पहले एक बाँह उठाई फिर एक टाँग उठाई जैसे इन हरकतों से उसके किसी रहस्य का द्वार आधा खुल कर रह जाएगा। बाकी आधा खोलने के लिए लोग व्याकुल हो उठेंगे। फिर उसने सीने पर हाथ रखा जैसे उसकी पोशाक वहीं से अटकी हुई है और वह हाथ हटा लेगी तो गिर पड़ेगी। वह नहीं, पोशाक। थोड़ी-सी इधर-उधर की अदाओं के बाद उसने अपने साए में हाथ डाल कर उसे, साए को नहीं हाथ को, ऐसे हिलाना शुरु किया जैसे देखनेवाला अपने हाथ को उसके साए में हिलाना चाहता। मेहरबानी करके कपड़े पहने रहो, मैं उससे कहना चाहता था, ऐसे ही गनीमत है। कपड़े पहने हुए तुम एक भरी-पूरी औरत मालूम होती हो। तुम्हारे साथ बातचीत भी की जा सकती है- कोई जरूरी नहीं कि बहुत सूक्ष्म अनुभूति की बातचीत हो - कुछ भी हो जिसमें तुम सच्चे मन से बोल सको : फोश हो, फैशन की हो, तुम्हारे अपने दो टूक फलसफे की हो। मगर तुमने कपड़े उतारे नहीं कि विषय बदला। कपड़े मत उतारो। घटिया और भड़कीले ही सही, उन्हें पहने रहो।

औरत ने साए के अन्दर से एक जाँघिया निकालकर दोनों हाथों में ले कर उसका आकार सब को दिखाया। उसे हवा में नचा कर उसने फेंक दिया। गिटार बजानेवाला एक आदमी बड़ी अदा से उठा कर उसे ले गया। औरत ने साया समेट कर एक जाँघ दिखाई। मुड़ कर देखा तो एक आदमी जिसे अब तक मैं खानेवालों के इंतजार में खड़ा बैरा समझ रहा था, एक बड़े लैम्प को औरत पर बैठा रहा था। ऐसे कई बड़े-बड़े लैंप कमरे में दिखाई दिए। ये सब कहीं दीवालों में लगे खड़े थे। तमाशा शुरु होते ही इन्हें कमरे के बीच लाया गया था। तमाशे में किस मौके पर कहाँ से कौन-सी रोशनी डाली जाएगी, यह तय था। इसी के अनुसार लैम्पों की जगहें निश्चित थीं। जो लोग इन्हें लाए थे वे, मैंने फिर गौर से देखा तो, बैरे ही दिखाई दिए। बैरे ही थे वे। उन सब की वर्दी

एक-सी थी। उन्हें वेतन खाना खिलाने का मिलता था और औरत पर रोशनी वे बेगार में डालते थे। जरा देर और ठहरूँ तो शायद मुझे खाने की तश्तरी मेज पर पटक कर लैम्प सँभालने दौड़ता हुआ कोई बैरा दिखाई दे जाए कि रोशनी के इंतजार में औरत को कुछ अधिक कम उघड़े न रहना पड़े। न, वहाँ विनोद तो किसी को छू भी न गया था।

औरत फर्श पर चित लेट कर हिलने लगी। नहीं जानता था कि किस वजह से लोग कुर्सी छोड़ कर खड़े नहीं हो गए क्योंकि बिना खड़े हुए उसकी रति देख नहीं सकते थे। वह जरा ही देर हिली, ठीक उतनी देर जितनी देर में आप तय न कर पाएँ कि खड़े हों या न खड़े हों और आपको काफी पीड़ा मिल जाए - इतनी ज्यादा नहीं कि आप ठगे जाने का अनुभव करने लगें। पहले पंजों और घुटनों के बल हो कर उसने हसरत-भरी निगाह हवा में डाली जैसे इतने पुरुषों के रहते भी वह अतृप्त रह गई है।

मैं सब खानेवालों को तो एक साथ नहीं देख सकता था, एक मेज पर मैंने ध्यान लगाया। उस पर तीन आदमी काला सूट पहने बैठे थे और एक धोती-कुरताधारी थे। धोती-कुरते का चेहरा पहली-पहली बार किसी महान सफलता के सुख से पसरा जा रहा था। उसका नौसिखियापन उसकी बाँछों में खिला पड़ रहा था जिससे उसके लिए सहानुभूति पैदा होती थी। हो सकता है, यह शराब का असर रहा हो। बाकी तीन आदमी जो काले कपड़े पहने थे उनमें मैल का कलफ जान पड़ता था। उनके चेहरे हड़ैले और बेलौस थे और उन पर संतुलित खुशी थी जिससे वह हवा में टँगे-से जान पड़ते थे।

औरत इसी मेज पर आई। उसने धोती-कुरता को बख्श दिया; वह जानती थी कि सूटवाले धोती-कुरता को खुश कर रहे हैं और उसे सूटवालों को ही खुश करना चाहिए -धोती-कुरता को बदहवास कर देने से क्या फायदा, जबकि उसे सिर्फ ललचाने में फायदा है। वह एक काले सूट की गोद में जा बैठी और उसके मुँह से सिगरेट निकाल कर पीने लगी। चारों पुरुष ऐसे हँसने की कोशिश करने लगे जैसे वे मुरली मनोहर हों जबकि वे दौलत कमाने में इतने घिस चुके थे कि उनका चेहरा लालसा की झलक आते ही बूढ़ा दिखाई देता।

अगले दस मिनट में औरत ने एक-एक करके सब कपड़े उतारे। अंतिम कपड़ा - एक लँगोट - उतारने के साथ लाल-पीली रोशनियाँ बुझ गईं। धुँधले उजास में वह नंगी खड़ी थी।

वह कहाँ की रहनेवाली है, मैंने पूछा, गोंडा, बस्ती, बेगूसराय, बहराइच, आरा, छपरा, राँची?

असम्भव था जानना। वह इतनी नंगी थी।

एक दुशाला ओढ़ कर वह भाग गई। शर्म दिखाने का उसका काम कायदे से तो सही था मगर उसकी उम्र ज्यादा दिखी, शर्म कम। मैंने नतीजा निकाला कि जब भी कोई तेजी से जाता है उसकी सही उम्र छिपाए नहीं छिपती चाहे वह साइकिल चलाए, चाहे दौड़े...

जैसा कि मैं बता चुका हूँ, मैं तीन दिन उस होटल में रहा। पहली शाम को जो देखा था ठीक वही दूसरी और तीसरी शाम को देखा। ठीक जब छातियाँ कपड़े से बाहर निकालने का वक्त आता, हरी रोशनीवाला खानसामा लपक कर अपने लैम्प के पीछे खड़ा हो जाता। उसके ऊपर तनाव साफ दिखता था। पर वह नंगी औरतें देखने का तनाव नहीं था। रोज नंगी औरत देखने से ऊब और रोज ठीक वक्त पर लैम्प न जला पाने के डर का मेल था वह तनाव। सब बाजा बजानेवाले औरत की तरफ थे और वे उसे मिल कर पीटते।

दूसरी शाम को मैंने बाजा शुरू करनेवालों को भी ठीक कल की तरह झाँझ पर पहली चोट मारते ही मस्त हो जाते देखा। तीसरी शाम को मैं यह भी पहचानने लगा कि पूरी धुन में कहाँ-कहाँ, किस-किस बाजेवाले का मस्त होना और कौन-सी अदा दिखाना निश्चित है। वे जानते थे कि सुननेवाले मजा लेने की ताकत खो चुके हैं - एक अदना वादक भी यह पहचान लेता है।

खानेवाले - नहीं, मैं दावे से नहीं कह सकता कि वे तीनों दिन वहीं थे या उन्होंने तीनों दिन वहीं खाया। देखिए न कि इन सब के बीच वही तो थे जिनके पास कुछ मनोरंजन कर सकने लायक पैसा था। वे उसे तरह-तरह के खाने पर फूँक सकते थे बगैर यह जाने हुए कि वे क्या खाना चाहते हैं? वे खाते जाते और होटल चलता रहता।

बाकी सब गरीब लोग थे। वे इस किले में सुरक्षित थे। वे इस शर्त पर सुरक्षित थे कि वर्दी पहनेंगे, सलाम करेंगे, बाजा बजाएँगे और औरत पर ठीक जगह, निश्चित समय पर, रोज-रोज रोशनी डालेंगे। और वे चिड़चिड़ाएँगे नहीं। औरत को मैं नहीं जानता, पता ही नहीं चला कि वह कहाँ की रहनेवाली है। अनायास एक बात मेरे दिमाग में आई। शहर में हत्याएँ हो रही हैं। कभी इस किले में हत्या होगी तो ये लोग नहीं मारे जाएँगे, मैंने कहा, मुझे उम्मीद है कि वे लोग औरत को भी नहीं मारेंगे, इससे क्या हुआ कि उसके शहर का मुझे पता नही! और अगर यही लोग मारेंगे तो भी औरत को नहीं मारेंगे, इससे क्या हुआ कि वह अब कहीं की नहीं रही।

https://www.hindiadda.com/kile-mein-aurat/